सन्त हृदयोद्गार

ब्रह्मलीन पूज्यपाद स्वामी श्रीशरणानन्दजी
महाराज के हृदयस्पर्शी उद्गार

मानव सेवा संघ
वृन्दावन

।। श्रीहरिः शरणम्।।

सन्त हृदयोद्‌गार

ब्रह्मलीन पूज्यपाद स्वामी श्रीशरणानन्दजी
महाराज के हृदयस्पर्शी उद्‌गार

{संघ के प्रकाशन 'क्रान्तिकारी सन्तवाणी' से संकलित}

मानव सेवा संघ
वृन्दावन

प्रकाशक :
मानव सेवा संघ
वृन्दावन-281121 (मथुरा)

© **सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन**

द्वितीय विशिष्ट संस्करण : 20,000

वार्षिकोत्सव (होली), 2011 ई.

'विशिष्ट संस्करण' मूल्य : **दस रुपये**

पुस्तक-प्राप्ति-स्थान :

- **मानव सेवा संघ**
  वृन्दावन-281121, मथुरा (उ.प्र.)
  फोन : 0565-2442778, 2456995
- **धार्मिक साहित्य सदन**
  बुलियन बिल्डिंग, हल्दियोंका रास्ता,
  जौहरी बाजार, जयपुर-302003 (राज.)
  फोन व फैक्स : 0141-2570602, 2563379
  E-mail : shrihari_jaipur@yahoo.co.in

।। श्रीहरिः शरणम् ।।

सन्त हृदयोद्गार

(ब्रह्मलीन पूज्यपाद स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज के हृदयस्पर्शी उद्गार)

1. अगर आप भगवान्‌को मानते हैं, तो उस मान्यताका परिचय हमारे आपके जीवनसे हो, केवल विचारोंसे नहीं। हमारा जीवन बता दे कि हम भगवान्‌को मानते हैं।

2. बहुत-से लोग हैं जो प्रभुको मानते हैं। बहुत-से लोग हैं जो संसारकी वास्तविकताको जानते हैं। महत्त्वकी बात यह है कि उस जाने हुएका प्रभाव कितना है जीवनमें; उस माने हुएका प्रभाव कितना है जीवनमें।

3. भगवान्‌का स्मरण करनेसे जीवका कल्याण होता है— यह बात भी हम अच्छी तरह जानते हैं, फिर भी मन भगवान्‌में नहीं लगता, तो इससे बढ़कर और नास्तिकता क्या होगी?

4. वस्तुविशेषमें भगवद्बुद्धि होना कोई कठिन बात नहीं है। पर यह अधूरी आस्तिकता है। पूरी आस्तिकताका तो अर्थ यह है कि भगवान्‌से भिन्न कुछ है ही नहीं। अभी भी नहीं है, पहले भी नहीं था और आगे भी नहीं होगा।

5. गहराईसे देखिये, किसीका होना कुछ अर्थ नहीं रखता, जबतक कि उससे अपना सम्बन्ध न हो, और किसीसे भी

सम्बन्ध उस समयतक नहीं होता, जबतक कि उसकी आवश्यकता न हो।

6. अगर आपको उनके बिना अनुकूलता प्रिय है, तो वह उसी प्रकारकी है कि एक सुन्दर कमरा सजा है और आप दोस्तके बिना हैं; एक सुन्दर स्त्री शृंगार करे और पतिसे वंचित रहे, या शरीर आत्मा-रहित हो। आस्तिकवादका न होना जीवनमें अकेले पड़े रहनेके समान है।

7. कुछ न करनेसे जीवन अपने लिये उपयोगी हो जाता है और सही करनेसे जीवन जगत्के लिये उपयोगी हो जाता है।

8. अपने लिये कुछ करना है— यह असत्का संग है।

9. यह मान लेना कि हम जब कुछ करेंगे, तभी कुछ मिलेगा, बिना किये कुछ नहीं मिलता है— इस धारणामें आस्था करना मानवको अविनाशी जीवनसे विमुख करना है।

10. जो दिन-रात अपने अहम्के ही महत्त्वको बढ़ाता रहता है, दुनिया उसका मुँह देखना पसन्द नहीं करती ईमानदारीसे।

11. *'सबहिं नचावत राम गोसाईं'*— यह उस भक्तके हृदयकी पुकार है कि जिसका अहंभाव मिट गया हो।

12. हमें अपनेमेंसे 'मैं सर्वहितैषी हूँ', 'मैं अचाह हूँ' अथवा 'मुझे अपने लिये संसारसे कुछ नहीं चाहिये'— यह अहंभाव भी गला देना चाहिये। यह तभी सम्भव होगा, जब

सर्वहितकारी प्रवृत्ति होनेपर भी अपनेमें करनेका अभिमान न हो और चाहरहित होनेपर भी 'मैं चाहरहित हूँ' ऐसा भास न हो। कारण कि अहंभावके रहते हुए वास्तवमें कोई अचाह हो नहीं सकता; क्योंकि सेवा तथा त्यागका अभिमान भी किसी रागसे कम नहीं है।

13. अगर तुम दूसरोंके लिये बोलते हो, दूसरोंके लिये सुनते हो, दूसरोंके लिये सोचते हो, दूसरोंके लिये काम करते हो तो तुम्हारी भौतिक उन्नति होती चली जायगी। कोई बाधा नहीं डाल सकता। अगर तुम केवल अपने लिये सोचते हो तो दरिद्रता कभी नहीं जायगी।

14. मैं तो इस नतीजेपर पहुँचा हूँ कि हम सबका वर्तमान हम सबके विकासमें हेतु है; चाहे दुःखमय है वर्तमान, चाहे सुखमय है।

15. सबसे बड़ा उपदेशक कौन है? जो जीवनसे उपदेश करता है। वह सबसे बड़ा वक्ता है, सबसे बड़ा पण्डित है, सबसे बड़ा सुधारवादी है। और सबसे घटिया कौन है? जो परचर्चा करके उपदेश करता है। कभी व्यक्तियोंकी चर्चा, कभी परिस्थितियोंकी चर्चा।

16. कर्तव्यनिष्ठ होनेसे ही कर्तव्यपरायणता फैलती है, समझानेसे नहीं, उपदेश करनेसे नहीं, शासन करनेसे नहीं, भय देनेसे नहीं, प्रलोभन देनेसे नहीं।

17. जहाँतक संसारकी सत्यता और सुन्दरताका भास है, वहाँतक काम-ही-काम है।

18. जब साधक प्राप्त विवेकके द्वारा शरीरके वास्तविक स्वरूपका दर्शन कर लेता है, तब शरीरकी सत्यता और सुन्दरता मिट जाती है। उसके मिटते ही कामका अन्त हो जाता है।

19. जो कुछ नहीं चाहता, वही 'प्रेम' कर सकता है और जो कुछ नहीं चाहता, वही 'मुक्त' हो सकता है।

20. मेरा अपना अबतकका अनुभव है कि जो हम चाहते हैं, वह न हो, इसीमें हमारा हित है। हमने तो जबतक अपने मनकी मानी है, अपने मनकी बात की है, तो सिवाय पतनके, सिवाय अवनतिके हमें तो कुछ परिणाममें मिला नहीं। ..... मैं आपके सामने अपनी अनुभूति निवेदन कर रहा हूँ, और इससे लाभ उठाना चाहते हैं तो अपनी चाही मत करो। प्रभुकी चाही होने दो। प्रभु वही चाहते हैं, जो अपने-आप हो रहा है।

21. किसी भी प्रकारकी कामना न रखनेवाला 'राजाओंका राजा'; जो शक्ति प्राप्त है उससे कुछ कम कामना रखनेवाला 'धनी'; शक्तिके समान कामना रखनेवाला 'मजदूर'; शक्तिसे अधिक कामना रखनेवाला 'कंगाल' है।

22. कामना ही क्रोधमें हेतु है, चाहे वह शुभ कामना हो अथवा

अशुभ। यद्यपि अशुभसे शुभ श्रेष्ठ है, परन्तु शुभ कामना भी दुःखका कारण है।

23. भगवान् इच्छा पूरी नहीं करते, वे तो भक्तको इच्छा-रहित करते हैं।

24. इच्छाओंके रहते हुए प्राण चले जायँ तो 'मृत्यु' हो गयी और प्राण रहते हुए इच्छाएँ चली जायँ तो 'मुक्ति' हो गयी।

25. जब अपने मनकी इच्छाके विपरीत हो, तब साधकको समझना चाहिये कि अब प्रभु अपने मनकी बात पूरी कर रहे हैं।

26. यदि भगवान्‌के पास कामना लेकर जायँगे तो भगवान् संसार बन जायँगे और यदि संसारके पास निष्काम होकर जायँगे तो संसार भी भगवान् बन जायगा। अतः भगवान्‌के पास उनसे प्रेम करनेके लिये जायँ और संसारके पास सेवा करनेके लिये, और बदलेमें भगवान् और संसार दोनोंसे कुछ न चाहें तो दोनोंसे ही प्रेम मिलेगा।

27. परमात्मासे यदि कुछ भी माँगेंगे तो आपका सम्बन्ध परमात्मासे तो रहेगा नहीं, जो हम माँगेंगे, उससे हो जायगा।

28. अपनेको जो चाहिये, वह अपनेमें है।

29. अगर आप यह मानते हैं कि सत्यकी जिज्ञासाके साथ-साथ

असत्‌की कामना भी है, तो कहना पड़ेगा कि सत्यकी जिज्ञासाके नामपर किसी असत्‌का ही भोग करना चाहते हैं।

30. हमने अपनेमें जो चाह पैदा कर ली है, यही हमारे और प्रभुके बीचमें मोटा परदा कहो, चाहे गहरी खाई कहो, बन गयी है।

31. उनकी अहैतुकी कृपा आवश्यक वस्तु बिना माँगे ही दे देती है और अनावश्यक माँगनेपर भी नहीं देती। इस दृष्टिसे कुछ भी माँगना अपनी बेसमझीका परिचय देना है और उनके मंगलमय विधानका अनादर करना है।

32. अगर इन्द्रियाँ संसारकी ओर जाती हैं तो अपराध क्या है उनका? संसारकी जातिकी ही हैं। लेकिन आप क्यों संसारको पसन्द करते हो जी, यह बताओ? आप तो भगवान्‌की जातिके हैं।

33. अपने बलका अभिमान छोड़कर साधक जब यह विकल्प-रहित दृढ़ विश्वास कर लेता है कि मुझपर भगवान्‌की कृपा अवश्य होगी, मैं उनका कृपापात्र हूँ, उसी समय उसपर भगवान्‌की कृपा अवश्य हो जाती है। इसमें कोई सन्देह नहीं है।

34. आप सच मानिये, उस अनन्तकी अहैतुकी कृपा निरन्तर योगकी, ज्ञानकी, प्रेमकी वर्षा कर रही है। परन्तु दुःखकी बात तो यह है कि हम उस कृपाके द्वारा जो वर्षा हो रही है,

उसका उपयोग नहीं कर पाते। आप कहें, कैसे उपयोग नहीं कर पाते? क्या हम थोड़ी-थोड़ी देरके लिये शान्त होते हैं? यदि शान्त हुए होते तो आपको स्वयं अनुभव होता कि प्रभुकी कृपाशक्ति योग दे रही है, प्रेम दे रही है, ज्ञान दे रही है और हम उससे तद्रूप होकर कृतकृत्य हो रहे हैं।

35. भूतकालके दोषोंके आधारपर वर्तमानकी निर्दोषतामें दोषका आरोप करना अपने प्रति अन्याय है। इसका अर्थ यह नहीं है कि भूतकालकी भूलका परिणाम परिस्थितिके रूपमें अपने सामने नहीं आयेगा, अवश्य आयेगा; किन्तु भूतकालके दोषके आधारपर वर्तमानकी निर्दोषतामें दोषका आरोप करना दोषयुक्त प्रवृत्तिको जन्म देना है।

36. पूजा-प्रार्थना सब परमात्माके साथ करनेवाली बात है। गुरु परमात्माका बाप हो सकता है, परमात्मा नहीं। हाँ, गुरुवाक्य ब्रह्मवाक्य हो सकता है। गुरु श्रद्धास्पद हो सकता है, प्रेमास्पद नहीं। व्यक्तिको अगर परमात्मा मानना है तो सबको मानो। गुरु साधनरूप हो सकता है, साध्यरूप नहीं।

37. आज उपदेष्टा गुरुकी लेशमात्र भी आवश्यकता नहीं है। आवश्यकता इस बातकी है कि कोई ऐसा वीर पुरुष या वीर महिला हो, जो किसी उपदेशको स्वीकार कर सके।

38. दुनियाका बड़े-से-बड़ा गुरु, बड़े-से-बड़ा नेता, बड़े-से-बड़ा राष्ट्र जो काम नहीं कर सकता आपके साथ, अगर आप

चाहें तो अपने साथ कर सकते हैं।

39. शास्त्रोंमें नेता या गुरु बननेको पतनका हेतु माना है। इससे सिद्ध होता है कि यह काम महापुरुषोंके ही उपयुक्त है। साधकको इस बखेड़ेमें कभी नहीं पड़ना चाहिये।

40. वास्तविक गुणोंका प्रादुर्भाव होनेपर उनका भास नहीं होता। अतः जबतक गुणोंका भास हो, तबतक समझना चाहिये कि गुणोंके स्वरूपमें कोई दोष है।

41. जब प्राणी अपनी प्रसन्नता किसी औरपर निर्भर कर लेता है, तब उसका चित्त अशुद्ध हो जाता है, जिसके होते ही अनेक दोषोंकी उत्पत्ति अपने-आप होने लगती है।

42. यह सभी जानते हैं कि गहरी नींदमें प्राणी प्रिय-से-प्रिय वस्तु और व्यक्तिका त्याग स्वभावसे ही अपना लेता है और उस अवस्थामें किसी प्रकारके दुःखका अनुभव नहीं करता, अपितु जाग्रत्-अवस्थामें यही कहता है कि बड़े सुखसे सोया। प्राकृतिक नियमके अनुसार कोई भी स्मृति अनुभूतिके बिना नहीं हो सकती। गहरी नींदमें कोई दुःख नहीं था, यह अनुभूति क्या साधकको वस्तु, व्यक्ति आदिसे अतीतके जीवनकी प्रेरणा नहीं देती? अर्थात् अवश्य देती है। ..... गहरी नींदके समान स्थिति यदि जाग्रत्में प्राप्त कर ली जाय तो यह सन्देह निर्मूल हो जायगा और यह स्पष्ट बोध हो जायगा कि वस्तु, व्यक्ति आदिके बिना भी जीवन है

और उस जीवनमें किसी प्रकारका अभाव नहीं है।

43. साधकको विश्वास रखना चाहिये कि जीवन स्वयं अपनी रक्षा करता है। यदि जीवन शेष है तो जीवनके साधन स्वयं प्राप्त हो जायँगे।

44. संसारकी सहायतासे जबतक जीवन मालूम होता है, तबतक तो मृत्युके ही क्षेत्रमें रहते हैं। शरीरके रहनेका नाम जीवन नहीं है। ..... शरीरसे सम्बन्ध टूटनेके बाद जीवनकी प्राप्ति होती है।

45. जिसको आप जानना और समझना कहते हैं, वह तो सीखना है। आपने सीखा है, सुना है। न आपने जाना है, न समझा है। ..... जाननेका अर्थ यह है कि जब आप ठीक-ठीक जान लें कि सचमुच इतने बड़े संसारमें मेरा कुछ है ही नहीं और मुझे कुछ नहीं चाहिये।

46. जो साधक अपने ज्ञानका आदर नहीं करता, वह गुरु और ग्रन्थके ज्ञानका भी आदर नहीं कर सकता। जैसे, जो नेत्रके प्रकाशका उपयोग नहीं करता, वह सूर्यके प्रकाशका भी उपयोग नहीं कर पाता।

47. कर्म ज्ञानका साधन नहीं होता, बल्कि भोगका दाता होता है।

48. एक शरीरको लेकर कुटियाके अन्दर बन्द कर दिया और हम त्यागी हो गये। तो मैं कहूँगा कि ऐसे तो तुम्हारे बाप भी

त्यागी नहीं हो सकते। यदि पूछो, क्यों त्यागी नहीं हो सकते? तो कहना होगा कि आपने अपना {अहम्का} तो त्याग किया नहीं। भाई मेरे, अगर त्याग करना हो तो अपना त्याग करो। और प्रेम करना हो तो सभीको प्रेम करो। और यदि अपने-आपका त्याग नहीं कर सकते तो आप संसारका कभी त्याग नहीं कर सकते।

49. केवल गृहत्याग करने एवं वस्त्र रंगनेमात्रसे किसीको योग-बोध-प्रेमकी प्राप्ति नहीं हो सकती। यह त्याग नहीं वरन् त्यागके भेषमें अपने कर्तव्यसे पलायन करना है।

50. प्रिय-से-प्रिय वस्तु तथा व्यक्तिका त्याग गहरी नींदके लिये भला किसने नहीं किया?

51. ईश्वर, धर्म और समाज किसीके ऋणी नहीं रहते। जो इनके लिये त्याग करते हैं, उनका ये अवश्य निर्वाह करते हैं।

52. त्याग हो जानेपर त्यागका भास नहीं रहता; क्योंकि त्यागकी स्मृति अथवा उसका अस्तित्व तभीतक प्रतीत होता है, जबतक त्याग होता नहीं।

53. इन तीन बातोंसे सारे जीवनकी समस्याएँ हल हो जाती हैं— १) मुझे कुछ नहीं चाहिये, २) प्रभु अपने हैं, ३) सब कुछ प्रभुका है। यही जीवनका सत्य है। इसको स्वीकार करनेसे उदारता, स्वाधीनता और प्रेम प्राप्त होगा।

54. ध्यान किसीका नहीं करना है। किसीका ध्यान नहीं करोगे तो परमात्माका ध्यान हो जायगा। और किसीका ध्यान करोगे तो वह फिर किसी औरका ही ध्यानमात्र रह जायगा।

55. अगर परमात्माके माननेवालोंको परमात्माकी याद नहीं आती, और करनी पड़ती है— यह कोई कम दुःखकी बात है? यह कम आश्चर्यकी बात है? अरे, मरे हुए बुजुर्गोंकी याद आती है आपको, गये हुए धनकी याद आती है आपको! तो परमात्मा इतना घटिया हो गया कि उसकी याद आपको करनी पड़े? ..... याद नहीं आती है इसलिये कि आप उसे अपना नहीं मानते।

56. जिस समय अपने दोषका दर्शन हो जाय, समझ लो कि तुम जैसा विचारशील कोई नहीं। और जिस समय परदोष-दर्शन हो जाय, उस समय समझ लो कि हमारे जैसा कोई बेसमझ नहीं।

57. अपने दोषका दर्शन अपनेको निर्दोष बनानेमें समर्थ है और परदोषदर्शन अपनेको दोषी बनानेमें हेतु है।

58. भगवान्‌के खिलाफ जो आवाज उठती है न, वह तर्कसे नहीं उठती है। वह आवाज उठती है भगवान्‌को माननेवालोंके दुश्चरित्रसे, और कोई बात नहीं है। भगवान्‌को माननेवाले अगर ठीक आदमी हों तो भगवान्‌के खिलाफ कोई बोल ही नहीं सकता।

59. परमात्माको 'अभी' न मानना बड़ी भारी भूल होगी, 'अपना' न मानना उससे बड़ी भूल होगी, और 'अपनेमें' न मानना सबसे बड़ी भूल होगी।

60. प्रभु अपनेमें हैं, अभी हैं और अपने हैं— इससे परमात्मा मिल जायगा।

61. याद रहे, और कुछ भी अपना है और परमात्मा भी अपना है— ये दोनों बातें एक साथ नहीं होतीं। जबतक हम और कुछ भी अपना मानते हैं, तबतक तो मुखसे कहते हुए भी हमने सच्चे हृदयसे भगवान्‌को अपना नहीं माना। यही इसकी पहचान है।

62. सर्वसमर्थ साधकका भूतकाल नहीं देखते। उसकी वर्तमान वेदनासे ही करुणित हो अपना लेते हैं।

63. वे अपनी वस्तुको सदैव देखते रहते हैं। उन्होंने कभी भी तुम्हें अपनी आँखसे ओझल नहीं किया। ..... साधक भले ही उन्हें भूल जाय, पर वे नहीं भूलते। ..... जिसकी जो वस्तुएँ हैं, उसे वह देखता ही है, सम्भालता ही है। ..... अपनी रचनासे क्या रचयिता अपरिचित होता है? कदापि नहीं।

64. भगवान्‌का कोई एक ठिकाना नहीं है। ऐसा नहीं है कि संसार अलग हो, तत्त्वज्ञान अलग हो, भक्ति अलग हो और

भगवान् अलग हो। सब मिलकर जो चीज है, उसीका नाम भगवान् है।

65. जो किसीका नहीं तथा जिसका कोई नहीं, उसके भगवान् अपने-आप हो जाते हैं; क्योंकि वे अनाथके नाथ हैं।

66. भगवान्‌के होकर 'भगवान्‌का स्वरूप क्या है?' यह प्रश्न क्या अर्थ रखता है? गहराईसे देखिये, प्यासने कभी नहीं पूछा, 'पानी क्या है?' भूखने किसीसे नहीं पूछा, 'भोजन क्या है?' पानी पाकर प्यास तृप्त हो गई, भोजन पाकर भूख तृप्त हो गई। तृप्ति होनेपर पानी और प्यासकी भिन्नता तथा भूख और भोजनकी भिन्नता शेष नहीं रहती।

67. जब हम अपनेमें शरीरभावका अभिनय स्वीकार करते हैं, तब हमारे प्यारे विश्वरूप होकर लीला करते हैं। शरीर होकर किसी भी खिलाड़ी (प्राणी) ने विश्वसे भिन्न कुछ नहीं जाना। ..... हम शरीर बनकर तो केवल उनको विश्वरूपमें ही देख सकते हैं।

68. ईश्वर मानवकी स्वाधीनता छीनना नहीं चाहता, इसलिये मानव जबतक स्वयं अपनी ओरसे ईश्वरके सम्मुख नहीं होता, तबतक ईश्वर उसके पीछे ही रहता है।

69. हमें उसको प्राप्त करना है कि जिसका हम त्याग कर ही नहीं सकते।

70. संसार परमात्माकी प्राप्तिमें बाधक नहीं है, बल्कि सहायक है। उसका जो हम सम्बन्ध स्वीकार करते हैं, वही बाधक है।

71. जगत्‌की सत्ता स्वीकार करके भगवान्‌को प्राप्त करना चाहते हैं? नहीं कर सकते। होगा क्या? भगवान् आयेंगे, लेकिन आप कहेंगे कि मेरी स्त्री बीमार है, अच्छी हो जाय। भगवान्‌को प्राप्त करना चाहते थे कि स्वस्थ स्त्रीको देखना चाहते थे? जरा सोचिये।

72. अगर आप कभी भी यह अनुभव करें, कभी भी मानें कि शरीर अलग हो जायगा, तो अभी मान लीजिये कि अभी अलग है। और इस बातमें विश्वास करें कि कभी भी परमात्मा मिल जायगा, तो अभी मान लीजिये कि अभी पास है, अभी भी मिला है।

73. परमात्मासे आप तो मिल सकते हैं, लेकिन शरीर द्वारा नहीं मिल सकते। आप अपने द्वारा मिल सकते हैं। हाँ, शरीरद्वारा परमात्माकी सृष्टिका कार्य कर सकते हैं।

74. भगवान् क्या कोई खेती है कि आज बोयेंगे तो कल उपजेगा और परसों मिलेगा? क्या भगवान् कोई वृक्ष है, जिसे आज लगायेंगे तो बारह वर्षमें फल लगेगा? भगवान् ऐसी चीज नहीं है। भगवान् तो वर्तमानमें भी ज्यों-का-त्यों मौजूद है।

75. सत्यका मार्ग इतना तंग है कि उसपर आप अकेले ही जा सकते हैं। इसलिये इन्द्रिय, मन, बुद्धि आदिके साथ रहनेका मोह छोड़ दें। इनके साथ रहकर आप उस तंग रास्तेपर नहीं चल सकते। अकेले होनेपर मार्ग अपने-आप दिखाई देगा।

76. जब आप अकेले हो जायँगे, तब भगवान्‌की कृपासे ही भगवान्‌को जान लेंगे। प्यारे, कोई भी प्रेमी अपने प्रेमपात्रसे किसीके सामने नहीं मिलता, तो फिर जबतक आप शरीर आदि अनेक सम्बन्धियोंको साथ लिये हुए हैं, आपका प्रेमपात्र आपसे कैसे मिल सकता है? भगवान् कैसे हैं? यदि यह जानना चाहते हो तो अकेले हो जाओ।

77. किसीको बुलाओ मत; क्योंकि जो आपका है, वह आपके बिना रह नहीं सकता अर्थात् अपने प्रेम-पात्रको निरन्तर अपनेमें ही अनुभव करो। ..... अपने सिवाय अपने लिये अपनेसे भिन्नकी आवश्यकता नहीं है।

78. ईश्वर-प्राप्तिके लिये वनमें जानेकी जरूरत नहीं है। जो घरमें आरामसे रहकर भजन नहीं कर सकता, वह वनमें कष्ट सहकर कैसे कर सकता है? वनमें रहना तो तपके लिये आवश्यक होता है।

79. जिसके मनमें शरीरको बनाये रखनेकी रुचि है, जो शरीरको ही अपना स्वरूप मानता है, वह ईश्वरको प्राप्त नहीं कर सकता।

80. परमात्मा है तो, पर न जाने कब मिलेगा? अरे भले आदमी, जब तुम कहते हो कि वह सदैव है, सर्वत्र है, सभीका है; तो कब मिलेगा कि अब मिला है? कितने आश्चर्यकी बात है! इससे बड़ा और कोई पागलपन हो सकता है क्या, यह सोचना कि न जाने परमात्मा कब मिलेगा? जबकि परमात्मासे आप कभी अलग हो सकते नहीं, हैं नहीं।

81. जिसको तुम प्राप्त करना चाहते हो, उसकी आवश्यकता अनुभव करो। उसको बलपूर्वक पकड़नेकी कोशिश मत करो, केवल आवश्यकता अनुभव करो।

82. आप सच मानिये, सिद्धि वर्तमानमें ही होती है। भविष्यमें कभी सिद्धि नहीं होती। भविष्यमें तो उसकी प्राप्ति होती है, जो वर्तमानमें नहीं है अर्थात् जिसकी उत्पत्ति हो। ..... जरा सोचिये, साध्य तो हो वर्तमानमें, और साधक यह माने कि हमें भविष्यमें मिलेगा! जरा ध्यान दीजिये, साध्य तो है वर्तमानमें, और मिलेगा भविष्यमें!

83. मानवको प्रभु दण्ड नहीं देता, विधान मानवको दण्ड नहीं देता, तो फिर क्या देता है? जिस परिस्थितिसे आपका विकास होता है, वही परिस्थिति आपको देता है।

84. यह दिमागी कौतूहल है कि किसी परिस्थिति-विशेषकी प्राप्तिसे हम वह हो जायँगे, जो हम आज नहीं हैं। सरकार,

यहीं रहेंगे, यहीं। अन्तर यही होगा कि आप तीन बटा चार न लिखकर पचहत्तर बटा सौ लिखियेगा।

85. प्राकृतिक नियमानुसार प्रत्येक परिस्थिति मंगलमय है, इसी ध्रुव सत्यके कारण जो हो रहा है, वही ठीक है।

86. प्रतिकूल परिस्थिति भोगमें भले ही बाधक हो, पर योगमें नहीं।

87. ऐसी कोई अनुकूलता है ही नहीं, जिसने प्रतिकूलताको जन्म न दिया हो और न ऐसी कोई प्रतिकूलता ही है, जिसमें प्राणीका हित न हो।

88. जितने आस्तिक होते हैं, वे प्रत्येक प्रतिकूलतामें अपने परम प्रेमास्पदकी अनुकूलताका अनुभव करते हैं कि अब हमारे प्यारेने अपने मनकी बात करना आरम्भ कर दिया। अब वे हमें जरूर अपनायेंगे।

89. प्रवृत्तिके द्वारा जिस किसीको जो कुछ मिलता है, वह कालान्तरमें स्वतः मिट जाता है।

90. प्रार्थना इसलिये नहीं की जाती कि आप कहेंगे, तब परमात्मा सुनेंगे। प्रार्थनाका असली रूप है— अपनी आवश्यकताका ठीक-ठीक अनुभव करना।

91. जिस प्रकार प्यासका लगना ही पानीका माँगना है, उसी प्रकार अभावकी वेदना ही प्रार्थना है।

92. जो तुम्हारे सम्बन्धमें तुमसे भी अधिक जानते हैं, क्या उनसे भी कुछ कहना है?

93. जिस प्रकार माँको शिशुकी सभी आवश्यकताओंका ज्ञान है एवं शिशुके बिना कहे ही माँ वह करती है, जो उसे करना चाहिये, उसी प्रकार आनन्दघन भगवान् हमारे बिना कहे ही वह अवश्य करते हैं, जो उन्हें करना चाहिये। परन्तु हम उनकी दी हुई शक्तिका सदुपयोग नहीं करते और निर्बलता मिटानेके लिये बनावटी प्रार्थना करते रहते हैं।

94. प्रभुकी महिमा सुनकर जो ईश्वरवादी होते हैं, वे कामी हैं, प्रेमी नहीं।

95. योगकी प्राप्तिमें, बोधकी प्राप्तिमें, प्रेमकी प्राप्तिमें कुछ न चाहना ही मूल मन्त्र है।

96. अपने प्रियतमको अपनेसे भिन्न किसी औरमें अनुभव मत करो।

97. जिनके सम्बन्धमात्रमें ही देहाभिमान गल जाता है, उनके प्रेमकी प्राप्तिमें भला देहादिकी क्या अपेक्षा होगी?

98. प्रेम तभी सुरक्षित रह सकता है, जब प्रेमीमें इस भावका उदय भी न हो कि मैं प्रेमी हूँ; क्योंकि प्रेम प्रेमीको खाकर ही पुष्ट होता है।

99. यह प्रश्न नहीं है कि आपका साध्य क्या है। प्रश्न यह है कि

आपकी अपने साध्यमें प्रियता है या नहीं। जीवनमें मूल्य प्रियताका है।

100. भोगी मनुष्य प्रेमका अधिकारी नहीं होता। वह तो सेवाका अधिकारी है।

101. जबतक प्राणीका शरीर और संसारसे सम्बन्ध नहीं छूटता, जबतक वह शरीरको 'मैं' और संसारको अपना मानता है, तबतक गोपी-प्रेमकी बात समझमें नहीं आती।

102. जहाँ प्रेम प्रकट हो जाता है, वहाँ इन्द्रियोंके दरवाजे बन्द हो जाते हैं।

103. जबतक देहभाव रहता है, मैं पुरुष हूँ, मैं स्त्री हूँ— ऐसा भाव होता है, तबतक गोपी-चरित्र सुनने और समझनेका अधिकार प्राप्त नहीं होता। फिर गोपी-प्रेम क्या है— यह तो कोई समझ ही कैसे सकता है?

104. जिस तनसे, धनसे, बुद्धिसे आप संसारमें भले आदमी कहलाये, उसी तन-बुद्धि आदिसे आप परमात्माके प्रेमी हो जायँ, यह सम्भव नहीं है।

105. आप अपने निकटवर्ती प्रियजनोंसे पूछिये कि आप हमको बहुत प्यारे लगते हैं, लेकिन हमारे पास जो वस्तु है, वह हम आपको नहीं दे सकते, तो आपको तुरन्त उत्तर मिलेगा कि आपका प्यार भाड़में जाय। ..... केवल प्रियतामात्रसे

रीझनेमें प्रभु ही समर्थ हैं। ..... संसारभरकी आप खोज कीजिये, एक भी आदमी आपको ऐसा नहीं मिलेगा जो आपको यह कहे कि हम आपको अपना मानते हैं, इतने मात्रसे आप प्रसन्न हो जाइये।

106. आत्मीयता वही कर सकता है, जो भोग और मोक्षको फुटबाल बनाकर ठुकरा दे। महँगी है तो इतनी और सस्ती है तो इतनी कि धोखेसे, बिना सोचे, बिना समझे एक बार यह कहके चुप हो जाय कि 'प्रभु, निस्सन्देह तुम सदैव मेरे हो', 'तुम सदैव मेरे हो'।

107. मेरा यह अनुभव है कि यदि हम अपने साथ बुराई न करते, तो संसारकी सामर्थ्य नहीं कि वह हमारे साथ बुराई कर सके।

108. जब-जब मैं सोचता हूँ, तब-तब मैं इसी निष्कर्षपर पहुँचता हूँ कि हे मानव! तूने अपने साथ जितनी बुराई की है, कोई दूसरा तेरे साथ उतनी बुराई कभी कर ही नहीं सकता।

109. अपनी भलाईका भास हो जानेपर भी भलाई 'भलाई' नहीं रह जाती। तब सूक्ष्मरूपसे बुराईका जन्म हो जाता है।

110. हम किसी दूसरेके प्रति कोई भलाई तथा बुराई कर ही नहीं सकते, जबतक कि अपनेको भला या बुरा न बना लें।

111. बुराईको बुराई जानकर न करना और भलाईको भलाई

जानकर करना साधन है। परन्तु किसी भी प्रलोभनसे प्रेरित होकर की हुई भलाई और किसी भयसे भयभीत होकर त्यागी हुई बुराई वास्तवमें साधनके रूपमें असाधन है।

112. बड़ी-से-बड़ी अच्छाई अभिमान आनेपर बुराईमें बदल जाती है।

113. सबसे बड़ा आदमी, जिसको सुपरमैन, अतिमानव कहें, कौन है? जिसके जीवनमें किसी प्रकारकी बुराई नहीं है, वह सबसे बड़ा आदमी है। किसके जीवनमें बुराई नहीं होती? जो सचमुच कभी किसीसे कुछ नहीं चाहता।

114. संसारका भय उसी समयतक जीवित रहता है, जबतक अपनी पूर्तिके लिये संसारकी आवश्यकता होती है।

115. देहाभिमानमें ही समस्त भय निहित हैं।

116. खाद्य पदार्थोंमें कुछ वस्तुएँ ऐसी हो सकती हैं, जो स्थूलशरीरके लिये तो उपयोगी हों, किन्तु सूक्ष्मशरीरके लिये हानिकर हों। ..... अतः आहारका सम्बन्ध केवल शरीरके अंगोंको हृष्ट-पुष्ट करना ही नहीं है, अपितु इन्द्रिय, मन, बुद्धि आदिको भी स्वस्थ रखना है। वह तभी सम्भव होगा, जब उस आहारका, जो सूक्ष्मशरीरके लिये हितकर नहीं है, त्याग कर दिया जाय। क्षोभ, असहनशीलता आदि दोषोंका सम्बन्ध सूक्ष्मशरीरके अस्वस्थ होनेसे ही है।

117. जबतक हम जगत्‌में प्रभुका दर्शन नहीं कर सकते अथवा यों कहो कि प्रत्येक वस्तुमें प्रभुका दर्शन नहीं कर सकते, तबतक सदाके लिये मन भगवान्‌में लग जाय, यह बात कभी भी सिद्ध नहीं होती।

118. मनमें कोई खराबी होती ही नहीं है। अपनी खराबी ठीक करो, मन ठीक हो जायगा।

119. कार्यकी अधिकतासे स्वास्थ्यपर प्रभाव हो सकता है, पर मानसिक स्थितिमें कोई विकृति नहीं होनी चाहिये। मानसिक विकृतिका मूल कारण पराधीनता है अर्थात् जिसकी प्रसन्नता किसी औरपर निर्भर हो जाती है, उसीके मनकी स्थितिमें क्षोभ उत्पन्न हो जाते हैं, जिससे मानसिक संतुलन नहीं रहता और फिर मस्तिष्कमें अनर्गल ख्याल उठते रहते हैं।

120. मनुष्य स्वयं अलग रहकर अपने मन, बुद्धि और इन्द्रियोंको भगवान्‌में लगाना चाहता है, भूल यहींसे होती है।

121. संसारके सम्बन्धका जो प्रभाव है, सच पूछो तो उसीका नाम मन है। मन कोई स्वतन्त्र पदार्थ नहीं है।

122. मनको जहाँ लगाना चाहते हैं, उसे पसन्द कर लें और जहाँसे हटाना चाहते हैं, उसे नापसन्द कर दें। मनकी चंचलताका भास तभी मिलता है, जब हम पसन्द तो

संसारको करते हैं और मन भगवान्‌में लगाना चाहते हैं।

123. वास्तवमें तो भलाई और बुराई कर्त्तामें होती है, करणमें नहीं होती। जब करणमें नहीं होती, तब मन कर्त्ता है ही नहीं, वह तो करण है। जब मन कर्त्ता है ही नहीं, तब हम और आप किस न्यायसे, किस ईमानदारीसे अपने मनको भला और बुरा बतलाते हैं? हम भले होते हैं, मन भला होता है। हम बुरे होते हैं, मन बुरा होता है।

124. किसीको भला और बुरा मानकर उसकी ममता मिटाना सम्भव नहीं है। ममता उसीकी मिट सकती है, जिसको भला अथवा बुरा न मानें। किसीको भला-बुरा समझना उससे सम्बन्ध जोड़ना है।

125. जिस वस्तुसे ममता नहीं रहती, वह अनन्तको समर्पित हो जाती है। यह नियम है कि जो वस्तु अनन्तको समर्पित हो जाती है, वह अनन्तकी कृपा-शक्तिसे स्वतः शुद्ध हो जाती है।

126. आजकल लोग क्या कहते हैं? ममता कैसे छूटेगी, कामना कैसे मिटेगी? अजी, ममता अगर अपने-आप छूटती, तो होती ही नहीं। क्यों? जो चीज आपने बनायी है, उसको कोई और नहीं मिटा सकता।

127. जो होती है, उसे मुक्ति थोड़े ही कहते हैं। जो है, उसे मुक्ति कहते हैं।

128. जो वस्तु जिस कामके लिये होती है, उसके लिये वह काम कठिन नहीं होता। यह मनुष्यजन्म केवल जीवके कल्याणके लिये ही मिलता है। इसलिये इसको पाकर कल्याणकी प्राप्तिको कठिन मानना भारी भूल है।

129. मेरे जीवनकी अन्तिम अनुभूति है कि श्रमके बिना, वस्तुके बिना, साथीके बिना हम सबको सिद्धि मिल सकती है।

130. इच्छाएँ रहते हुए प्राण चले जायँ तो, 'मुत्यु' हो गयी, फिर जन्म लेना पड़ेगा। और प्राण रहते इच्छाएँ चली जायँ, 'मुक्ति' हो गयी। जैसे बाजार गये, पर पैसे समाप्त हो गये और जरूरत बनी रही तो फिर बाजार जाना पड़ेगा। और यदि पैसे रहते जरूरत समाप्त हो जाय तो बाजार काहेको जाना पड़ेगा?

131. जो जीवनमें मुक्त नहीं होता, वह मरनेके बाद भी मुक्त नहीं होता। और जो ऐसा मानता है कि मुक्ति अभी नहीं मिली, मरनेके बाद मिलेगी, वह अपनेको धोखा देता है।

132. जहाँतक हमारे विश्वासकी बात है, वह यह है कि मरनेमें कोई कष्ट नहीं होता। कष्ट जो होता है, वह इस बातका होता है कि हम जीना चाहते हैं और मरना पड़ रहा है। ..... अगर हम जीना न चाहें तो मरनेमें कोई कष्ट नहीं है।

133. भोग-बुद्धिका अन्त होते ही योग बिना ही प्रयत्न हो जाता है।

134. स्वप्नकी घटना स्वप्नकालमें तो जाग्रत्‌के ही समान सत्य है और जाग्रत्‌में भूतकालकी घटनाएँ वर्तमानमें स्वप्नके समान ही मिथ्या हैं। इस दृष्टिसे स्वप्न और जाग्रत्‌की घटनाएँ समान ही अर्थ रखती हैं; परन्तु प्राणी जाग्रत्‌की घटनाको सत्य मानकर उनके राग-द्वेषमें आबद्ध हो चित्तको अशुद्ध कर लेता है।

135. शरीरका पूर्ण स्वस्थ होना शरीरके स्वभावसे विपरीत है; क्योंकि जिस प्रकार दिन और रात दोनोंसे ही कालकी सुन्दरता होती है, उसी प्रकार रोग और आरोग्य दोनोंसे ही शरीरकी वास्तविकता प्रकाशित होती है।

136. रोग-निवृत्तिका एक सर्वोत्तम उपाय यह भी है कि यदि रोगी रोगी-भावका सद्भाव अपनेमेंसे निकाल दे तो फिर रोग बेचारा निर्जीव हो जाता है; क्योंकि 'मैं' की सत्तासे सभी सत्ताएँ प्रकाशित होती हैं। ..... सद्भावसे प्रतीतिमें सत्यता आ जाती है, जो दुःखका मूल है।

137. रोग यही है कि 'मैं रोगी हूँ'। औषधि यही है कि 'मैं सर्वदा आरोग्य हूँ'; क्योंकि आरोग्यतासे जातीय एकता है। ..... यदि एक बार भी अपनी पूरी शक्तिसे यह आवाज लगा दो कि 'मैं आरोग्य हूँ' तो रोग भाग जायगा।

138. जब साधक अपने लक्ष्यको मिली हुई वस्तु, योग्यता, सामर्थ्यके द्वारा प्राप्त करना चाहता है, जो उसे विश्व-

सेवाके लिये मिली हैं, तब लक्ष्यसे दूरी, भेद, भिन्नता प्रतीत होती है।

139. वस्तुएँ तो हमारा त्याग कर ही रही हैं, यदि हमने भी उनका त्याग कर दिया तो वे हमारी सराहना करेंगी। वे घबड़ाती हैं, बहुत दुःखी होती हैं संग्रहसे, दुरुपयोग करनेवालेसे और उससे, जो उनपर ममताका पत्थर रख देता है। वे प्रसन्न होती हैं उससे, जो न उनसे ममता करता है, न उनका संग्रह करता है और न दुरुपयोग। उनकी प्रसन्नताकी पहचान यह है कि फिर आपके लिये आवश्यक वस्तुएँ अपने-आप आने लगती हैं, जीवनसे दरिद्रता सदाके लिये मिट जाती है।

140. विवेकके प्रकाशको ही जब किसी भाषा-विशेष या लिपि-विशेषमें आबद्ध कर देते हैं, तो वह 'ग्रन्थ' कहलाता है और जब उस विवेकके प्रकाशको किसीके जीवनमें देखते हैं, तो उसे 'सन्त' कहने लगते हैं।

141. देखे हुएमें विश्वास और बिना देखे हुएपर विचार करना विश्वास और विचारका दुरुपयोग है।

142. आपको जो व्यक्ति मिला है, वह विश्वास करनेके लिये नहीं, सेवा करनेके लिये मिला है। आपको जो वस्तुएँ मिली हैं, वे संग्रह करनेके लिये अथवा विश्वास करनेके लिये नहीं, सदुपयोग करनेके लिये मिली हैं।

143. हम अपने लिये यह करेंगे, इससे हमें कुछ मिलेगा, हमें जगत्‌से कुछ मिलेगा, हमें प्रभुसे कुछ मिलेगा। तो जबतक ये बातें जीवनमें रहती हैं, तबतक विश्राम नहीं मिलता।

144. शरणागत होनेमें ही साधकके पुरुषार्थकी परावधि है।

145. जो सच्चाईपूर्वक प्रभुके शरणागत हो जाते हैं, उनको आवश्यक वस्तुएँ बिना माँगे ही मिल जाती हैं, और अनावश्यक माँगनेपर भी नहीं मिलतीं।

146. हम अपने शरीरको अपना मानते हैं और बहुत महत्त्व देते हैं, इसलिये संसार इसे महत्त्व नहीं देता। एक सम्पत्तिके दो मालिक नहीं हो सकते। जो वस्तु प्रभुकी हो जाती है, उसकी व्यवस्था आप-से-आप हो जाती है।

147. परमात्माको पानेके लिये आपको कोई सामग्री नहीं चाहिये। जब कोई सामग्री नहीं चाहिये तो शरीरका क्या अचार डालोगे? यह परमात्माकी प्राप्तिमें तो काम आयेगा नहीं। शरीरके द्वारा परमात्माके संसारकी सेवा कर दो।

148. साधकोंको वास्तवमें अपने लिये किसी भी कालमें शरीरकी आवश्यकता नहीं है।

149. किसीसे कोई पूछे कि तुम खूनमें, हड्डियोंमें, मांसमें, मज्जामें, मूत्रमें रहना चाहते हो? तो सभी विचारशील यही कहेंगे कि नहीं रहना चाहते। कारण कि मलिनता किसीको

प्रिय नहीं। अब हम स्वयं सोचें कि देहमें मलिनताके अतिरिक्त क्या है, तो मानना होगा कि कुछ नहीं।

150. जहाँ देह है, वहीं मृत्यु है।

151. यदि किसीसे कहा जाय कि सुवर्णके कलशमें मल-मूत्रादि भरकर और रेशमसे ढककर क्या उसे अपने पास रखना पसन्द करोगे? तो सभी भाई-बहन कह देंगे, नहीं। फिर हम शरीरको सुन्दर-सुन्दर अलंकारों एवं वस्त्रोंसे सुशोभित क्यों रखते हैं? तो कहना होगा— बुद्धिजन्य ज्ञानके निरादरसे।

152. जैसे संसार मुझसे अलग है, जितना दूर है, यह शरीर भी मुझसे उतना ही दूर है। जैसे संसारपर मेरा स्वतन्त्र अधिकार नहीं है, वैसे ही अपने शरीरपर भी मेरा स्वतन्त्र अधिकार नहीं है। ..... ईमानदारीकी बात तो यह है कि शरीर और संसारका आपसे कभी मिलन हुआ ही नहीं।

153. शरीरके बिना साधक अचाह हो सकता है; प्रभुसे आत्मीय सम्बन्ध जोड़ सकता है; की हुई तथा जानी हुई बुराईसे रहित होनेका व्रत ले सकता है; प्रभु-विश्वासके आधारपर अभय हो सकता है। प्रभु-प्रेमसे साधक प्रभुके लिये उपयोगी हो सकता है।

154. हम शरीरमें बैठे हैं, यह महापागलपन है। शरीर नहीं रहेगा तो मेरी क्षति हो जायगी— यह मानना बड़ा भारी पागलपन

है।

155. जो मनुष्य अपने शरीरसे सम्बन्ध नहीं तोड़ सकता, वह संसारसे भी नहीं तोड़ सकता। सम्बन्ध रखते हुए यदि वह हिमालयपर चला जाय तो भी उसका चित्त शान्त और शुद्ध नहीं हो सकता।

156. पढ़ा-लिखा भ्रममें तभी पड़ता है, जब अपनी बात नहीं मानता। पढ़ाई-लिखाई तो एक प्रकारकी योग्यता है। योग्यता जब ज्ञानके अधीन नहीं रहती, तो बड़े-बड़े अनर्थ कर डालती है। समाजमें जितने दोष पढ़े-लिखोंने फैलाये, उतने किसीने नहीं फैलाये।

157. शिक्षित होनेकी कसौटी क्या है? तो कहना होगा कि ज्ञान-विज्ञान, कला आदिके द्वारा हम अपनेको इतना सुन्दर बना लें कि समाजको हमारी आवश्यकता अनुभव होने लगे।

158. हिंसात्मक युद्ध किसी प्रकार विजय प्राप्त नहीं कर सकता; क्योंकि शरीररूपी क्षेत्रके तोड़ देनेसे विचारोंका समुदाय मिटाया नहीं जा सकता। अतः हिंसात्मक युद्धसे जो राष्ट्र आज छिन्न-भिन्न दिखायी देता है, वही कालान्तरमें घोर प्रबलतापूर्वक पुनः युद्ध करनेके लिये समर्थ होता है; क्योंकि उसकी युद्धकी भावना नष्ट नहीं हुई थी। मरनेवाला प्राणी पुनः मारनेके लिये प्रकृति मातासे शक्ति लेकर

उत्पन्न होता है।

159. दुःखियोंके शरीर आदि वस्तुओंको छिन्न-भिन्न कर देनेसे उनका अन्त नहीं हो जाता; क्योंकि सूक्ष्म तथा कारणशरीर शेष रहते हैं। यदि हम किसीके स्थूलशरीरको नष्ट भी कर दें तो भी वह प्राणी जिस भावको लेकर स्थूलशरीरका त्याग करता है, उसी भावनाके अनुरूप प्रकृति मातासे अथवा यों कहो कि जगत्-कारणसे शक्तिसंचय कर, हमसे अधिक शक्तिशाली हो, हमारा विरोध करनेके लिये हमारे सामने आ जाता है।

160. संसारकी जरूरत आपको न रहे और संसार आपकी जरूरत अनुभव करे— यह है जीवनका शुद्ध भौतिकवाद। इसको कहते हैं दुनियामें रहनेका सही ढंग।

161. अपना सुधार जो नहीं कर सकता, वह किसीका सुधार नहीं कर सकता, सुधारके नामपर अपनी कामनाओंकी पूर्ति कर सकता है।

162. संसार दुःखद नहीं है, संसारका सम्बन्ध दुःखद है।

163. जब आप कोई कामना पूरी करना चाहते हैं, तब आपको संसारका भास होता है। आप कुछ न चाहें, संसार आपको मुँह नहीं दिखायेगा।

164. शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि आदिके द्वारा सत्संग नहीं

होता। अपने ही द्वारा सत्संग करना है; कारण कि अपने हीमें सत्संगकी माँग है। शरीरके सम्बन्धसे तो ममता, कामना आदि विकारोंकी उत्पत्ति होती है।

165. सत्संगका अर्थ यह व्याख्यान सुनना नहीं है। यह तो सच्चर्चा है। सोचना-समझना— यह सच्चिन्तन है। सत्संग है— सत्यको स्वीकार कर लेना। 'मेरा कुछ नहीं है'— यह सत्य है। 'मुझे कुछ नहीं चाहिये'— यह सत्य है।

166. समस्त विश्व मिलकर भी साधककी वास्तविक माँगको पूरा नहीं कर सकता। इस दृष्टिसे साधकका मूल्य सृष्टिसे अधिक है।

167. जो किसीके लिये भी अनुपयोगी होता है, वह साधक नहीं है।

168. साधक महानुभाव व्यक्तिगत साधनाको सामूहिक साधना बनानेका प्रयास न करें, न उसका प्रदर्शन करें।

169. शरीरकी असंगतामें ही प्रेमास्पदकी आत्मीयतापूर्वक अभिन्नता निहित है। इस दृष्टिसे असंग होना प्रत्येक साधकके लिये अनिवार्य है।

170. जो किसीसे कुछ भी पानेकी आशा करता है, वह साधक नहीं है, अपितु भोगी है।

171. शरीर आदिकी स्मृतिमात्र भी साधकके लिये असह्य है, तो

फिर उनमें विशेषताकी अभिरुचि रखना आसक्तिके अतिरिक्त और क्या है?

172. जो अपने सुखके लिये तप करता है, जो अपने सुखके लिये जप करता है, उसकी गणना, माफ कीजियेगा, हिरण्यकश्यपकी सूचीमें की जाती है। ..... अपने सुखके लिये किया गया भजन, अपने सुखके लिये किया गया तप, अपने सुखके लिये किया हुआ दान, यह राक्षसी स्वभाव है। यह मानवी स्वभाव नहीं है।

173. आजकल लोग साधन तो करते नहीं और साधनका फल लेना चाहते हैं, तब उनको सफलता कैसे मिले? हरेक मनुष्य सोचता है कि साधन करके योग्यता तो दूसरा प्राप्त कर ले और हमें आशीर्वाद दे दे, ताकि हमें उसका सुख मिल जाय। ..... साधनकी सफलताके लिये साधकको स्वयं साधन करना पड़ेगा।

174. कारणका नाश होनेपर भी कार्यकी प्रतीति होती है। जिस प्रकार वृक्षका मूल कट जानेपर भी उसकी हरियाली कुछ काल प्रतीत होती है, उसी प्रकार असत्का त्याग करनेपर भी असत्के संगके प्रभावको कुछ काल साधक अपने शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि आदिमें देखता है और भयभीत हो जाता है। इतना ही नहीं, अपने किये हुए असत्के त्यागमें भी विकल्प कर बैठता है। असत्का त्याग

वर्तमानकी वस्तु है; परन्तु उसके प्रभावके नाशमें काल अपेक्षित है। अपने निर्णयमें विकल्प करना भी तो असत्का ही संग है। जब साधक सावधानीपूर्वक अपने निर्णयमें विकल्प नहीं करता, तब अपने-आप असत्के संगका प्रभाव नष्ट हो जाता है।

175. जबतक आप जगत्की सत्ता स्वीकार करते हैं, तबतक आप साधनका आरम्भ कर सकते हैं— भौतिक दर्शनके दृष्टिकोणसे। और जब आप जगत्की सत्ता अस्वीकार करते हैं, तब आप साधन कर सकते हैं— अध्यात्म दर्शनके दृष्टिकोणसे। जब आप प्रभुकी सत्ता स्वीकार करते हैं, तब आप साधन कर सकते हैं— आस्तिक दर्शनके दृष्टिकोणसे। आज दशा क्या है? कि सत्ता स्वीकार करते हैं जगत्की, और प्राप्त करना चाहते हैं भगवान्को।

176. साधनमें कठिनाई है कहाँ? कठिनाई जहाँ आपको मालूम हो तो समझ लें कि हम अपने मनकी कोई बात पूरी करना चाहते हैं, इसलिये कठिनाई है।

177. रोटी खानेमें आप पूरी शक्ति लगा सकते हैं और सच्चाईकी खोजमें आप सोचते हैं— कोई सहज साधन बताइये, कोई सुलभ साधन बताइये। मैं आपसे पूछता हूँ— रोटी खानेके लिये जितना श्रम कर सकते हैं, सत्यकी खोजके लिये उतना क्यों नहीं कर सकते?

178. जो सत्य किसी आचार्य, पीर, पैगम्बरको मिला, वह सत्य तो आपको मिल सकता है; लेकिन जिस प्रकारसे उनको मिला, उसी प्रकारसे आपको भी मिल जायगा— यह बात गलत है।

179. यदि साधन है तो प्रत्येक प्रवृत्ति साधन है; नहीं तो भैया, जबतक किसी प्रवृत्ति-विशेषका नाम साधन है और किसी प्रवृत्ति-विशेषका नाम असाधन है, तबतक सब असाधन है।

180. दुःखकी बात तो यह है कि जो हम अपने द्वारा कर सकते हैं, उसको नहीं करते और जो शरीरके द्वारा कर सकते हैं, उसीको करनेकी कोशिश करते हैं।

181. आप स्वीकार कीजिये कि 'प्रभु मेरे हैं', इससे जीवन प्रभुके लिये उपयोगी सिद्ध हो जायगा। सेवाका व्रत ले लीजिये, तो जीवन जगत्के लिये उपयोगी हो जायगा। अकिंचन और अचाह होनेसे जीवन अपने लिये उपयोगी हो जायगा। यदि आप इन तीनोंमेंसे किसीको भी स्वीकार नहीं करते, तो अनन्त जन्मोंतक आपसे कोई साधन नहीं करा सकता।

182. यदि भजन करके भगवान्से हम धन, सन्तान आदि कुछ माँगते हैं, तो हमारा साध्य तो वह इच्छित पदार्थ ही हुआ, भगवान् तो उसकी प्राप्तिके साधन हुए।

183. प्रभुका नाम, प्रभुका काम, प्रभुका ध्यान समान अर्थ रखते हैं।

184. साधन बोझा नहीं है। आज साधकको यह मालूम होता है कि जैसे कोई आदमी रोटी खाकर निश्चिन्त होकर उठता है, वैसे ही जब वह ध्यानसे उठता है तो उसे विश्राम मिलता है अर्थात् जब वह ध्यानमें था, तब उसे विश्राम नहीं था! तो क्या यह भी साधन है कि ध्यानकालमें विश्राम न मिले?

185. जिस प्रकार बिना प्राणका शरीर कितना ही सुन्दर क्यों न हो, बेकार होता है, उसी प्रकार व्याकुलतारहित साधन कितना ही उत्तम क्यों न हो, बेकार हो जाता है।

186. भगवान्‌की ओर मन लगाकर काम करना उतना अच्छा नहीं है, जितना अच्छा कामको भगवान्‌का समझकर करना है।

187. बाहरी साधनोंमें अपनेको अधिक मत फँसाओ। जहाँतक हो सके, हृदयसे प्रेमपात्रको पुकारो।

188. जो प्राणी बाहरी साधनोंमें अपनेको अधिक बाँध लेता है, उसमें साधनका मिथ्या अभिमान आ जाता है। बाहरी साधन निर्बलताओंको ढक देता है, मिटा नहीं पाता। ..... छिपा हुआ साधन बाहरी साधनोंसे कहीं अधिक सबल होता है। छिपा हुआ त्याग तथा प्रेम बढ़ जाता है, छिपी हुई प्रीति सच्ची व्याकुलता उत्पन्न करती है, जो वास्तवमें सच्चा

भजन है। किसीने भी बहुमूल्य वस्तुओंको बाहर निकालकर नहीं रखा, सब छिपाकर ही रखते हैं। अतः प्रीति जैसी अमूल्य वस्तुको हृदयमें छिपाकर रखना चाहिये।

189. साधन कोई ऐसा कार्य नहीं है, जिसमें कभी न करनेकी बात आये। साधन वही है जो स्वभावसे ही निरन्तर होता रहे। यदि साधनमें व्यवधान पड़ता है तो यह समझना चाहिये कि साधनके भेषमें किसी असाधनको अपना लिया है।

190. जो साधन जीवनके किसी एक अंशमें प्रतीत होता है, वह वास्तवमें साधनके भेषमें असाधन ही है; क्योंकि साधकका समस्त जीवन साधन है।

191. कामनाको लेकर जो ईश्वरका भजन-चिन्तन किया जाता है, वह कामनाकी पूर्ति होनेपर या न होनेपर ईश्वरसे विमुखता प्रदान करता है।

192. आप सुनना और सीखना बन्द करें, और जानना और मानना प्रारम्भ करें, तो काम बन जायगा। जाननेके स्थानपर 'मेरा कुछ नहीं है'— इसके सिवाय और कुछ नहीं जानना है, और माननेके स्थानपर सिवाय परमात्माके और कोई माननेमें आता नहीं है।

193. अगर आप यह मानते हैं कि सिद्धि {वर्तमानमें} नहीं हो

सकती, तो साधन करनेकी क्यों सोचते हैं? आप कहेंगे कि साधन करनेकी तो इसलिये सोचते हैं कि कालान्तरमें, जन्म-जन्मान्तरमें हमको सिद्धि मिलेगी। इसका अर्थ यह हुआ कि अभी हम असाधन-जनित सुखका भोग करना चाहते हैं।

194. आप दशासे परिचित होते नहीं, जरूरतसे परिचित होते नहीं, साधनसे परिचित होना चाहते हैं। जो साधन आपकी जरूरतके अनुसार नहीं होगा, जो जरूरत आपकी मौजूदा दशामेंसे नहीं निकलेगी, यह कैसे ठहरेगी आपके जीवनमें! प्यासे आदमीको पानीकी बात सुननेको मिले तो वह फौरन पकड़ लेता है; क्योंकि प्यास लगी है, उसे जरूरत है। पहले आप अपनी मौजूदा हालत देखिये, क्या है? फिर अपनी जरूरत देखिये, क्या है? फिर उपाय पूछिये अपनी जरूरतको सामने रखकर, तो जरूरतका अनुभव होना ही एक बहुत बड़ा उपाय हो जायगा।

195. व्यथित हृदयसे इतना ही कह दीजिये कि हे प्यारे, हम आपको अपना मानना चाहते हैं, पर मान नहीं पाते; हम ममता तोड़ना चाहते हैं, पर तोड़ नहीं पाते। व्यथित हृदयसे इतना कहकर मौन हो जाइये। आपको पता भी न चलेगा कि ममता कैसे टूट गयी और आत्मीयता कैसे आ गयी। क्यों? जो करना चाहते हैं आप, चाहते हैं और नहीं कर

पाते, तो जो चाहना है, वही करना है और कुछ नहीं करना है।

196. सुख जाता ही है और दुःख आता ही है। इस विधानमें मानवका अमंगल नहीं है, अपितु मंगल ही है।

197. सब कामोंके अन्तमें सोते समय और सोकर उठते समय एवं जो कोई काम करो, उसके अन्तमें भजन जरूर करना चाहिये। जो मनुष्य हरेक कामके अन्तमें कम-से-कम एक बार भी निश्चितरूपसे भगवान्‌को याद कर लेता है, उसको मरते समय भगवान् जरूर याद आ जायँगे।

198. यह नियम है कि जिस कठिनाईको शान्तिपूर्वक सहन कर लिया जाता है, वह कठिनाई स्वयं हल हो जाती है। शान्तिपूर्वक सहन करनेका अर्थ है, अपने दुःखका कारण किसी औरको न मानकर दुःखको सहन कर लेना।

199. ऐसा कोई सुख नहीं है, जिसका जन्म किसी दुःखसे न हो और ऐसा भी कोई सुख नहीं है, जिसका दुःखमें अन्त न हो।

200. दुःखी 'त्याग' से और सुखी 'सेवा' से उन्नति करता है।

201. सत्यकी आवाजको किसी व्यक्तिकी आवाज, सत्यके ज्ञानको किसी व्यक्तिका ज्ञान, सत्यके प्रेमको किसी व्यक्तिका प्रेम, सत्यके आनन्दको किसी व्यक्तिका आनन्द

और सत्यके सौन्दर्यको किसी व्यक्तिका सौन्दर्य समझना परम भूल है। इस भूलके होनेसे ही व्यक्तियोंसे राग हो जाता है, जो दुःखका मूल है। रागसे दुःख तथा त्यागसे आनन्द अवश्य मिलता है।

202. सुखकी आशासे मिलना अलग होनेकी तैयारीके अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

203. दुःखीका दुःख उसी समयतक जीवित है, जबतक अभागा दुःखी दुःखको संसारकी सहायतासे मिटाना चाहता है। संसारसे निराश होते ही दुःखहारी हरि दुःखको स्वयं हर लेते हैं।

204. आपके निज स्वरूपमें अपार आनन्द छिपा है, जो दुःखकी कृपासे मिलेगा, सुखकी कृपासे नहीं।

205. निरन्तर अखण्ड प्रसन्न रहनेका स्वभाव बनाओ। ज्यों-ज्यों प्रसन्नता बढ़ती जायगी, प्रतिकूलता लज्जित होकर हटती जायगी। प्यारे, प्रसन्नताकी ओर सभी देखते हैं; अतः सारा विश्व आपकी ओर देखेगा। दुःखीकी ओर दुःखहारीके अतिरिक्त और कोई नहीं देखता।

206. हृदयहीन हुए बिना, बेईमान हुए बिना, अपना मूल्य घटाये बिना और पराधीन हुए बिना कोई आदमी सुख नहीं भोग सकता।

207. सुखके भोगीसे प्राणिमात्र भयभीत हो जाता है; क्योंकि हिंसा तथा प्रमादके बिना सुखभोगकी सिद्धि ही नहीं होती।

208. योग प्राप्त होनेपर जबतक 'हम योगी हैं', तबतक योगके भोगी हैं। और ज्ञान प्राप्त होनेपर जबतक 'हम ज्ञानी हैं', तबतक ज्ञानके भोगी हैं। और प्रेम प्राप्त होनेपर जबतक 'हम प्रेमी हैं', तबतक हम प्रेमके भोगी हैं। और भाई, जो प्रेमका भोगी है, वह कभी-कभी 'काम' का भोगी हो सकता है। और जो ज्ञानका भोगी है, वह कभी-कभी 'अज्ञान' का भोगी हो सकता है। और जो योगका भोगी है, वह कभी-कभी 'भोग' का भोगी हो सकता है।

209. अगर आपकी कोई शारीरिक सेवा करेगा तो आप उसका उपकार इसलिये नहीं मानते कि उसने सेवा की है, आप इसलिये मानते हैं कि शरीरको आपने अपना माना है। ऐसे ही सेवा करनेवाला आपपर एहसान करता है तो समझिये कि वह सेवा नहीं करता। वह परमात्माकी दी हुई वस्तुको अपनी मानकर, बेईमान बनकर संसारमें मिथ्या अभिमान करता है।

210. सेवा वह तत्त्व है, जिसका हल्के-से-हल्का बोझ भी सेव्यपर न जाय।

211. यदि हमारी की हुई सेवा हमारे जीवनमें पद-लोलुपता तथा

जिनकी सेवा की है, उनसे किसी प्रकारकी आशा उत्पन्न कर देती है तो समझना चाहिये कि हमने सेवाके नामपर किसी अपने स्वार्थकी ही सिद्धि की है। ऐसी सेवा तो वह बुराई है, जो भलाईका रूप धारण करके आती है।

212. 'सेवा' माने हुए सम्बन्धको तोड़नेमें और 'प्रेम' जिससे जातीय एकता है, उससे अभिन्न करनेमें समर्थ है।

213. सेवाका मूल्य प्रभु देता है, संसार नहीं दे सकता।

214. जो स्वयं दुःखी है, वह सेवा नहीं कर सकता, किन्तु 'विचार' कर सकता है। बेचारे सुखी प्राणीमें सुखासक्तिके कारण विचारका उदय नहीं होता, प्रत्युत वह 'सेवा' कर सकता है।

215. तुम अपनी दशा मत देखो, अपितु अपने स्वरूपको देखो। भला तुमतक कभी भी सृष्टि पहुँच सकती है? कदापि नहीं।

216. अपने लिये अपनेसे भिन्नकी आवश्यकता कदापि नहीं हो सकती; क्योंकि भिन्नतासे एकता होनी सर्वथा असम्भव है।

217. स्वाधीनताका अर्थ ही यह है कि आप जब स्वाधीनता पसन्द करेंगे तो शरीरकी भी आप आवश्यकता अनुभव नहीं करेंगे।

218. जो हो रहा है, वह सभीके लिये हितकर है, पर जो कर रहे हैं, उसीपर विचार करना है।

219. जिस व्यक्तिको अपनी प्रसन्नताके लिये दूसरोंकी ओर देखना नहीं पड़ता, उसीका जीवन स्वाधीन जीवन है।

220. भूतकालको भूलकर, भविष्यकी आशाको छोड़कर और वर्तमानकी आवश्यक नियमानुसार क्रियाओंसे असंग हो जानेपर आत्मानुभव अवश्य होगा।

221. जो बिना सीखे हो, वही सच्चा 'ज्ञान' है अर्थात् स्वभावतः आ जाय। जो बिना हेतुके हो, वही सच्चा 'प्रेम' है। और जो बिना किये हो, वही सच्चा 'त्याग' है; क्योंकि सच्चा त्याग करना नहीं पड़ता, हो जाता है।

222. हमारे मत, सम्प्रदाय, विचारधारा आदिका विरोध सिद्धान्तरूपसे नहीं होता, अपितु हमारा दोषयुक्त जीवन ही हमारे सिद्धान्तोंका विरोध करानेमें हेतु है। हम अपने सिद्धान्तोंकी महिमाका वर्णन करके उनका प्रचार चाहते हैं, पर वास्तविक प्रचार तो उन सिद्धान्तोंका होगा, जिनका चित्र हमारे जीवनमें दिखायी देता है।

223. दूसरोंके सुधार एवं सिखानेकी बात सीमित गुणोंका अभिमान एवं अपनी योग्यताका परिचय देना है।

224. मौनका अर्थ खाली चुप होना नहीं है, बल्कि न सोचना भी है, न देखना भी है अपनी ओरसे। मुझे जो चाहिये, सो तो मुझमें है, फिर इन्द्रियोंकी क्या अपेक्षा? मौनके पीछे एक दर्शन है कि हमको जो चाहिये, वह अपनेमें है, अपना

है और अभी है।

225. हम थोड़ी देरके लिये, दो, चार या दस मिनट, इससे ज्यादा नहीं, बिना कोई काम करे अकेले रहनेका स्वभाव बनायें। यह कोशिश करें कि दस मिनटतक हम कोई काम नहीं करेंगे, अकेले रहेंगे, बिना सामान और बिना साथीके रहेंगे, शरीरको लेकर नहीं। हमें जो अपने बहुत-से साथी मालूम होते हैं, बहुत-सा सामान मालूम होता है, उसके बिना रहेंगे। इसका अर्थ यह नहीं है कि हम साथियोंको नाराज कर दें या सामानको बरबाद कर दें। ऐसा मेरा मतलब नहीं है। लेकिन थोड़ी देरके लिये ऐसा अनुभव करें कि मान लो, हमारे पास हमारा शरीर भी नहीं रहेगा, तब हम होंगे कि नहीं? ऐसा प्रश्न अपने सामने रखें।

226. अगर हम थोड़ी-थोड़ी देरके लिये विश्राम करनेका स्वभाव बना लें, अकेले होनेका स्वभाव बना लें, तो हमें अपनेमें ही, कहीं बाहर नहीं, प्रीतमकी प्राप्ति हो जायगी।

227. राग-रहित होनेपर 'योग' की प्राप्ति होती है और द्वेष-रहित होनेपर 'प्रेम' की अभिव्यक्ति होती है।

'मानव सेवा संघ' के ग्यारह नियम

मानव किसी आकृति-विशेष का नाम नहीं है। जो प्राणी अपनी निर्बलता एवं दोषों को देखने और उन्हें निवृत्त करने में समर्थ है, वही वास्तव में 'मानव' कहा जाता है।

1. आत्म-निरीक्षण, अर्थात् प्राप्त-विवेक के प्रकाश में अपने दोषों को देखना।
2. की हुई भूल को पुनः न दोहराने का व्रत लेकर सरल विश्वास पूर्वक प्रार्थना करना।
3. विचार का प्रयोग अपने पर और विश्वास का दूसरों पर अर्थात् न्याय अपने पर और प्रेम तथा क्षमा अन्य पर।
4. जितेन्द्रियता, सेवा, भगवच्चिन्तन और सत्य की खोज द्वारा अपना निर्माण।
5. दूसरों के कर्तव्य को अपना अधिकार, दूसरों की उदारता को अपना गुण और दूसरों की निर्बलता को अपना बल न मानना।
6. पारिवारिक तथा जातीय सम्बन्ध न होते हुए भी पारिवारिक भावना के अनुरूप ही पारस्परिक सम्बोधन तथा सद्भाव अर्थात् कर्म की भिन्नता होने पर भी स्नेह की एकता।
7. निकटवर्ती जनमानस की यथाशक्ति क्रियात्मक रूप से सेवा करना।
8. शारीरिक हित की दृष्टि से आहार-विहार में संयम तथा दैनिक कार्यों में स्वावलम्बन।
9. शरीर श्रमी, मन संयमी, बुद्धि विवेकवती, हृदय अनुरागी तथा अहं को अभिमान-शून्य करके अपने को सुन्दर बनाना।
10. सिक्के से वस्तु, वस्तु से व्यक्ति, व्यक्ति से विवेक तथा विवेक से सत्य को अधिक महत्व देना।
11. व्यर्थ-चिन्तन त्याग तथा वर्तमान के सदुपयोग द्वारा भविष्य को उज्ज्वल बनाना।

'मानव सेवा संघ' के उपलब्ध प्रकाशन

1. सन्त समागम भाग-1
2. सन्त समागम भाग-2
3. सन्त समागम भाग-3
4. सन्त वाणी भाग-1 (सफलता की कुंजी)
5. सन्त वाणी भाग-2
6. सन्त वाणी भाग-3
7. सन्त वाणी भाग-4
8. सन्त वाणी भाग-5 (क)
9. सन्त वाणी भाग-5 (ख)
10. सन्त वाणी भाग-6
11. सन्त वाणी भाग-7
12. प्रश्नोत्तरी (सन्त वाणी)
13. सन्त सौरभ (सन्त वाणी)
14. सन्त उद्‌बोधन
15. प्रेरणा पथ
16. सन्त पत्रावली भाग-1
17. सन्त पत्रावली भाग-2
18. सन्त पत्रावली भाग-3 (साधन सूत्र राशि)
19. जीवन दर्शन भाग-1
20. जीवन दर्शन भाग-2
21. चित्त शुद्धि भाग-1
22. चित्त शुद्धि भाग-2
23. जीवन पथ
24. मानव की माँग
25. मानव दर्शन
26. मूक सत्संग और नित्य योग
27. मानवता के मूल सिद्धान्त
28. सत्संग और साधन
29. साधन तत्त्व
30. साधन त्रिवेणी
31. दर्शन और नीति

32. दुःख का प्रभाव
33. मंगलमय विधान
34. जीवन विवेचन भाग-1 (क)
35. जीवन विवेचन भाग-1 (ख)
36. जीवन विवेचन भाग-2
37. जीवन विवेचन भाग-3
38. जीवन विवेचन भाग-4
39. जीवन विवेचन भाग-5
40. A Saint's call to Mankind
41. Sadhna Spot light by a Saint
42. संत जीवन दर्पण
43. मानव सेवा संघ का परिचय- आचार संहिता सहित
44. साधन निधि
45. पाथेय भाग-1
46. पाथेय भाग-2
47. पथ प्रदीप
48. प्रार्थना तथा पद
49. मैं की खोज
50. जीवन विवेचन भाग-6 (क)
51. जीवन विवेचन भाग-6 (ख)
52. जीवन विवेचन भाग-7 (क)
53. जीवन विवेचन भाग-7 (ख)
54. संत वाणी भाग-8
55. Ascent Triconfluent
56. क्रान्तिकारी सन्तवाणी
57. Revelation of the Spiritual Path
58. सन्त हृदयोद्‌गार

विशेषः-

(क) संत वाणी तथा जीवन विवेचन के कैसेट्स एवं संत वाणी के C.D./D.V.D. उपलब्ध हैं।

(ख) रु.250 से अधिक तथा रु.1000 से अधिक पुस्तकों की सहयोग राशि पर क्रमशः 15% तथा 25% की छूट दी जाती है।

प्रार्थना

मेरे नाथ!

आप अपनी सुधामयी, सर्व-समर्थ, पतित पावनी, अहैतुकी कृपा से दुःखी प्राणियों के हृदय में त्याग का बल एवं सुखी प्राणियों के हृदय में सेवा का बल प्रदान करें, जिससे वे सुख-दुःख के बन्धन से मुक्त हो, आपके पवित्र प्रेम का आस्वादन कर कृत-कृत्य हो जाएं!

❀ ❀ ❀

मेरे नाथ!

आप अपनी सुधामयी, सर्व-समर्थ, पतित-पावनी, अहैतुकी कृपा से मानव-मात्र को विवेक का आदर तथा बल का सदुपयोग करने की सामर्थ्य प्रदान करें, एवं हे करुणा सागर! अपनी अपार करुणा से शीघ्र ही राग-द्वेष का नाश करें, सभी का जीवन सेवा, त्याग, प्रेम से परिपूर्ण हो जाए!

ॐ आनन्द! ॐ आनन्द!! ॐ आनन्द!!!

सन्त हृदयोद्‌गार